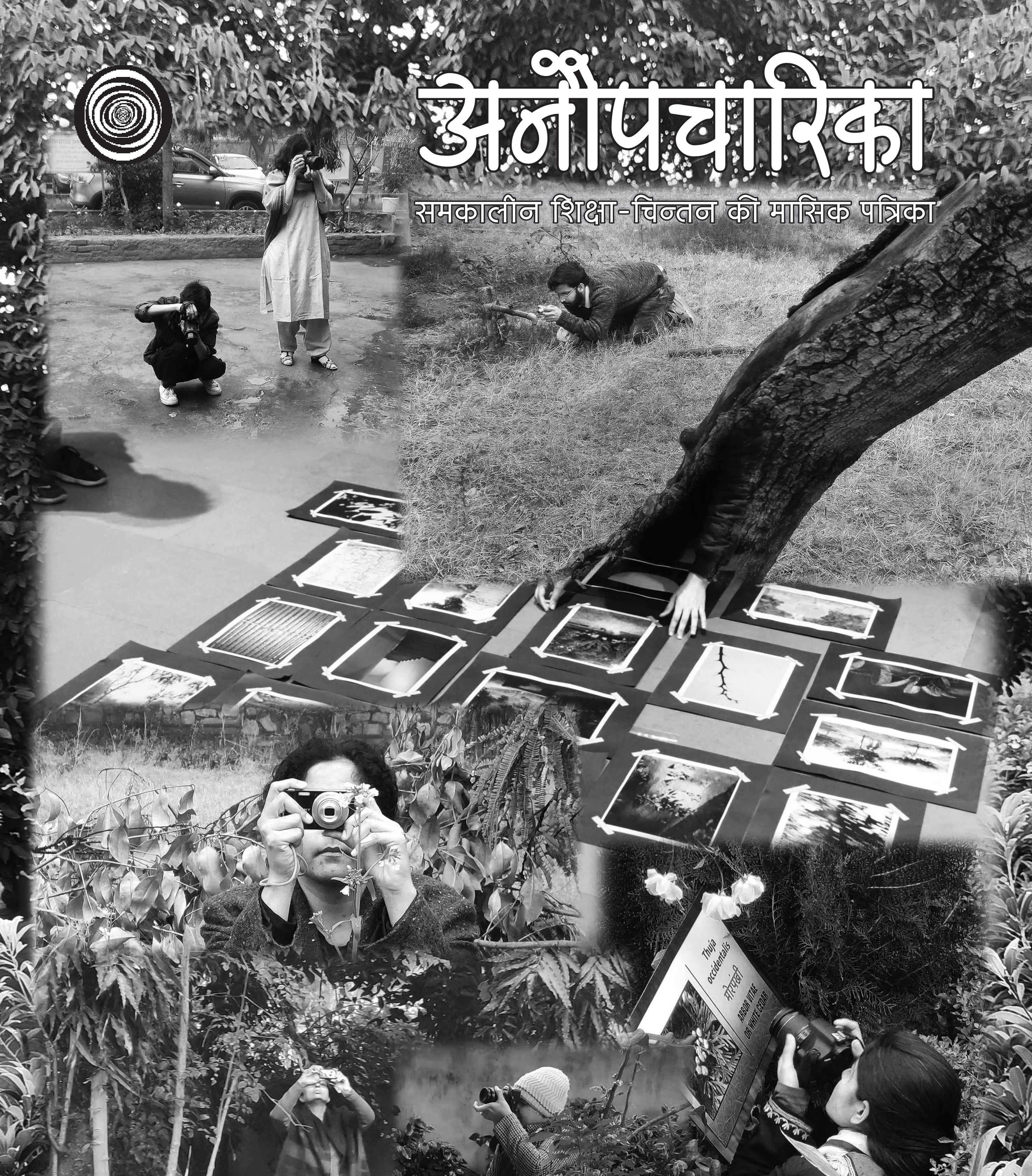
अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका



वर्ष : ४८ अंक : १ पौष-माघ वि.सं.- २०७८ जनवरी २०२२ मूल्य-१८ रुपये पृष्ठ -२८ RNI 43602/77 ISSN No.2581-981X

चित्र–समाचार







रैदास *

बिनु देखे उपजै नहिं आसा।
जो दीसै सो होइ बिनासा।।

बरन सहित जो जापै नामु।
सो जोगी केवल निहकामु।।

परचै रामु रवै जो कोई।
पारसु परसै न दुबिधा होई।।

सो मुनि, मन की दुबिधा खाइ।
बिनु द्वारे त्रैलोक समाइ।।



पृष्ठ २४ पर पढ़ें **रैदास* कथा**

समानो मन्त्र: समिति: समानी समानं मन: सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये व: समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूति: समाना हृदयानि व:।
समानमस्तु वो मनो यथा व: सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : ४८ अंक : १ पौष-माघ वि.सं. २०७८ जनवरी, २०२२

क्र म

अपील

समिति के सभी सदस्यों, दूर-दराज के मित्रों एवं भारत के विभिन्न राज्यों में फैले सुधी पाठकों से निवेदन है कि समिति के प्रकाशन की निरंतरता बनाये रखने के लिए अपनी सहयोग राशि पूरी उदारता के साथ भिजवाने का अनुग्रह करें। आज किसी भी पत्रिका का प्रकाशन बहुत मुश्किल काम है मगर समिति अपने पूर्ण सेवा भाव के साथ अनौपचारिका को पिछले ४८ वर्षों से निरंतर निकाल रही है। सभी प्रबुद्ध पाठक जानते हैं कि अभी हाल ही में कादम्बिनी भी बंद हो गई है जो हिन्दुस्तान टाइम्स का प्रकाशन था। ऐसी स्थिति में हम कटिबद्ध हैं कि अनौपचारिका निरंतर निकलती रहे। आपका सहयोग सादर अपेक्षित है।

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext.Jhalana Jaipur

I.F.S.C.Code : BARB0EXTNEH
(fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct,No. 9815010002077

संस्थापक संपादक एवं संरक्षक :
रमेश थानवी
कार्यकारी संपादक :
प्रेम गुप्ता
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
७-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-३०२००४
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com

सद्भावना सहयोग –
व्यक्तिगत ५००/– रुपये वार्षिक
संस्थागत १०००/– रुपये वार्षिक
मैत्री समुदाय ५०००/– रुपये

नव वर्ष, नयी उमंग, नयी शुरुआत

ना कोई रंज का लम्हा किसी के पास आये,
नया साल सबको रास आये।।

मित्रो आइए, हम सब नये वर्ष का, नये हर्ष और नये उत्कर्ष के साथ स्वागत करते हैं। नया साल पीछे मुड़कर देखने का मौका देता है और आगे की सुध लेने का अवसर भी। यह एक ओर खूबसूरत मौका है जब हम अपने भीतर झांककर भी देखते हैं और आगे की राह पर भी नजर डालते हैं। जीवन को बेहतर बनाने का, संवारने का, अपने मुकाम को पाने का और सतत प्रयासरत रहने का एक नया अवसर है।

नये वर्ष में राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति ने नवाचार के रूप में एक नया अभिनव प्रयोग किया है। **चित्–छाया** नाम से फोटोग्राफी की कार्यशाला का आगाज और आरंभ समिति के इतिहास में दूसरी नयी घटना है। एक बार पहले भी फोटोग्राफी की कार्यशााला हुई थी, मगर इस बार जो संकल्पना जगी वह सर्वथा अनूठी थी।

चित्–छाया कार्यशाला दिनांक १–७ जनवरी २०२२ को राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति प्रांगण में संपन्न हुई। इस कार्यशाला में २० संभागियों ने शिरकत की। सभी संभागियों के लिए यह कार्यशाला एक उत्सव बन गयी । कार्यशाला की शुरुआत अपने नाम के अर्थ और उसमें दिखने वाली छवियों की कल्पना से की गई। प्रत्येक संभागी को अपने नाम के साथ कैसी छवि दिखायी देती है, उसकी व्याख्या करनी थी। हर छवि की सुंदरता में खो जाने के बजाए, उसे साक्षी भाव से देखना। उसके मर्म को पहचानना, उसके हर पहलू के प्रति जागरूक होना, सजग होना इस फोटोग्राफी कार्यशाला का मुख्य विजन रहा। यह कार्यशाला सुप्रसिद्ध फोटोग्राफर कवि, चिंतक **हिमांशु व्यास** के निर्देशन में आकल्पित और आयोजित की गई। उनकी टीम के प्रमुख साथी **अर्थशास्त्री प्रो.अपर्णा मक्कड, नाट्य निर्देशक मूमल, फोटोग्राफी में गहरी रुचि रखने वाले अंशुल, अभिषेक, बोधायन, यामिनी एवं विपिन** का इस कार्यशाला में भरपूर सहयोग रहा। टीम के सभी सदस्यों ने दिन रात मेहनत कर इस कार्यशाला को जीवंत कर दिया।

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के अध्यक्ष, शिक्षाविद् **रमेश थानवी** ने छायाचित्र के अर्थ समझाते हुए बताया छवि में आवाज नहीं है। छायाचित्र में कोई भाषा नहीं होती। मगर इसका अपना एक व्याकरण होता है। यह व्याकरण भावों का व्याकरण होता है। एक–एक छवि यदि किसी विशेष शृंखला में जोड़ी जाये तो नयी भाषा की रचना करती है। दूसरा दिन हम देखना सीख रहे थे। यह देखना केवल दृश्य को देखना नहीं था। बल्कि उसके मूल स्वरूप को गहराई से देखना था। समय के साथ उसमें रूपांतर होता रहता है। तीसरे दिन **हिमांशु जी** ने सुप्रसिद्ध फोटोग्राफर **कुमार बिश्वास** के विशेष कथन से

की। **आई एम आई** यानी मैं आंख हूं। **ब्रेसों** से लेकर **बिथोविन** के बारे में महत्वपूर्ण जानकारियां दी। उन्होंने बताया कि सबसे छोटा संवाद चित्र है जिसके माध्यम से हम बहुत कुछ कह सकते हैं। **हिमांशु जी** का अपनी बात कहने का तरीका एकदम घरेलू था । एकदम सरल विरल। हर शब्द में कितनी गहराई!

फोटोग्राफी की जानकारी देते हुए उन्होंने बताया कि लेखक **जॉन बर्जर** का कहना है बच्चे पहले देखते हैं, फिर बोलते हैं। चलना, चलना है । जैसे कि महात्मा बुद्ध का चलना ही प्रसिद्ध है। देखने को हम जब साध लेते हैं। उस दृश्य को रेखांकित करना, देखने को आकार देना **चित्–छाया** है। कैमरे में लाइट किस तरह प्रवेश करती है, फिल्म कैसे बनती है, यह सब समझना, हर दृश्य में डूब जाना एवं अभिभूत होकर देखना ।

फोटोग्राफी उत्सव कार्यशाला में हर काम को एक नया अंदाज दिया गया। जिसमें श्रम महत्वपूर्ण था। सुई और धागे का साथ होना, नया आकार देना कितना भावपूर्ण था, यह बता पाना मुश्किल है।

हम सभी संभागियों द्वारा अपने थैले पर **चित्–छाया** का टुकड़ा काटकर सुई धागे से सिलना हमें कैसे एकाकार कर रहा था यह तो बड़ा ही मनोहारी दृश्य था। वाह!

अगले दिन उस थैले पर सूर्य की रोशनी में प्रत्येक स्टिच को टच करके देखना, हर एक सिंगल सिलाई को रिट्रेस करना और देर तक स्थिर दृष्टि से एकटक देखते जाना, ऐसा लग रहा था कि हर सिलाई सुई और धागा जोड़ने का काम कर रही थी। हम सहकार होना सीख रहे थे। यहां सब कुछ अद्वैत था।

इस फोटोग्राफी कार्यशाला ने हमें **विटनेस** की तरह देखना सिखाया।

फोटोग्राफी करने से पहले हमें सावधानी, माहौल की पहचान, परिवेश की समझ, ऑब्जर्व करना इसके साथ फिटनेस जैसी बातों पर ध्यान रखना बहुत जरूरी है। क्या मैं इन सब चीजों को सोच पा रही हूं या सोच पा रहा हूं?

फोटोग्राफी में हम जो देख रहे हैं दिमाग और शरीर का एक हो जाना, सचेत हो जाना जो देख रहे हैं, उस पर ट्रस्ट नहीं करना यह सब इसके विशेष बिंदु रहे।

एक अच्छा फोटोग्राफ क्या होता है? जिसमें क्लियर सेंटर ऑफ इंटरेस्ट हो, सब्जेक्ट में गुड कंपोजीशन हो, सब्जेक्ट शार्प फोकस हो।

हिमांशु जी ने हर एक फोटोग्राफर के छायाचित्र को हमें रुक कर देखने का मौका दिया। वहाँ सब कुछ विजिबल था। जैसे हम बहुत कुछ छाया चित्र के माध्यम से सरल सहज तरीके से सीख पा रहे थे।



फोटो लेते समय हमें चार बातों पर विशेष ध्यान देना है इस पर विस्तृत चर्चा की गयी। १. टेक द पिक्चर २. चेक द एक्स्पोज़र ३. डिसाइड द लाइट ४. टेक नेक्स्ट पिक्चर। समिति के हॉल में बहुत से छायाचित्र लगाये गये और उन्हें देखकर सभी संभागीय ने नयी रचना की। सबसे महत्वपूर्ण कंपोजीशन, अपर्चर, शटर लीडिंग लाइन जैसे सभी मुख्य पहलुओं पर चर्चा हुई। नये वर्ष में हमारी नयी यात्रा ऐसे ही नये आयोजन के साथ हुई। ❑ **प्रेम गुप्ता**

मातृभाषा की उपेक्षा और प्रवेश परीक्षाओं का दुष्चक्र

कनक लता

❑

सदियों से दुनिया के अधिसंख्य शिक्षाविदों ने अपनी दो टूक राय व्यक्त की है कि प्रारंभिक स्कूली शिक्षा मातृ–भाषा में ही दी जानी चाहिए। मातृ–भाषा का आशय घर में बोली जाने वाली बोली से ही था। नयी शिक्षा नीति में भी मातृ–भाषा में शिक्षण की पैरवी की गयी है, मगर अब एक मानक भाषा का विकास करने में शासकीय व्यवहार ने अपनी शान समझी है। और शिक्षा पर तथाकथित मानक भाषा आरोपित कर दी है । केवल एक ही देश में ऐसा नहीं हुआ बल्कि दुनिया के तमाम देशों में मानक भाषा का भूत शिक्षा पर सवार हो गया। इसका मूल कारण राजनेता तो थे ही मगर उनसे भी ज्यादा योगदान सभी देशों में नौकरशाहों का रहा है। शासन एक अलग भाषा में अपने अहंकार की रक्षा कर सकता है और यही वजह है कि शासकीय भाषा शिक्षा पर आरोपित हो गयी और सारी दुनिया के विद्यार्थी शिक्षा की सहजता, सरलता और सुगम्यता से वंचित रह गये। सीखने वालों के लिए शासकीय भाषा परायी भाषा थी और परायी भाषा सदा दुखदायी होती है। यह बात राजस्थान में एक वयोवृद्ध शिक्षाविद् बापजी चतरसिंहजी ने सौ बरस पहले कह दी थी।

यहां राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति में हमने चालीस बरस पहले बोलियों में साक्षरता की प्रवेशिकाएं बनायी थीं और सहायक सामग्री भी बोलियों में विकसित की थी औरे स्वयं अनुभव किया था कि बोलियों में लिखी हुई किताबें ग्रामीण पाठक सहर्ष स्वीकार करते हैं। नौकरशाहों की दखल के कारण उन किताबों का भी नामलेवा अब कोई रहा नहीं। वही ढाक के तीन पात।

कनकलता जी का विवेचनात्मक आलेख अत्यन्त पठनीय है इसलिए समयान्तर के सौजन्य से यहां प्रस्तुत किया जा रहा है। ❑ सं.

इस समय दिल्ली विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों के नामांकन की प्रक्रिया समाप्ति की ओर है, इस दौरान पुन: कुछ कॉलेज १०० प्रतिशत अंकों वाले विद्यार्थियों को तरजीह देने को बेताब दिखे, शायद उनकी इच्छा दुनिया को यह दिखाने की है कि उनके यहां की 'क्वालिटी' कितने उच्च–स्तर की है।

यह कवायद प्राचीनकाल के तक्षशिला और नालंदा विश्व विद्यालयों की याद दिलाती है, जहां विद्यार्थियों की प्रवेश–परीक्षा वहां का द्वार–रक्षक लिया करता था। उस समय अवश्य यह विश्वविद्यालय की

उच्चतर गुणवत्ता का परिचायक रहा होगा–जिसके द्वार रक्षक इतने काबिल हैं, उसके शिक्षक, उसके विद्यार्थी कितने काबिल होंगे।

प्रारंभिक शिक्षा की भाषा : स्थानीय बनाम अंग्रेजी

हमारी 'शिक्षा नीति' में बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा उनकी स्थानीय–भाषा में ही प्रदान करने की वकालत खूब की गयी है, आलोचकों, बुद्धिजीवियों और शिक्षाविदों द्वारा भी। तार्किक रूप से यह ठीक, युक्तिसंगत और बच्चों के अनुकूल एवं उनके लिए दूरगामी रूप से लाभकारी भी है, क्योंकि कोई भी बच्चा अपने घर–परिवार अपने परिवेश और समाज में रहते हुए जिस भाषा में प्रतिदिन सुनता, समझता, बात करता है, उसी भाषा में यदि उसकी शिक्षा की शुरुआत हो, तो वह वाकई बहुत कारगर होती है। इससे बच्चों में पढ़ने–लिखने एवं पुस्तकों के प्रति रुचि विकसित होती है, जो आगे की शिक्षा की निरंतरता के लिए बहुत जरूरी है।

लेकिन प्रश्न तो यह है कि वे सभी लोग जो सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों की प्रारंभिक–शिक्षा उनकी मातृभाषा में ही दिए जाने की वकालत करते हैं, उनके अपने बच्चे किन विद्यालयों में एवं किन भाषाओं के माध्यमों से पढ़ते हैं ? उत्तर मिलेगा–'बेहतरीन निजी विद्यालयों में अंग्रेजी माध्यम से'! लेकिन क्यों ? क्या उनके बच्चों के संदर्भ में उपरोक्त तर्क लागू नहीं होता? यदि ऐसा नहीं है, तब तो प्रश्न यह भी उठेगा

यह कवायद प्राचीनकाल के तक्षशिला और नालंदा विश्व विद्यालयों की याद दिलाती है, जहां विद्यार्थियों की प्रवेश–परीक्षा वहां का द्वार–रक्षक लिया करता था। उस समय अवश्य यह विश्वविद्यालय की उच्चतर गुणवत्ता का परिचायक रहा होगा–जिसके द्वार रक्षक इतने काबिल हैं, उसके शिक्षक, उसके विद्यार्थी कितने काबिल होंगे।



कि एक ही देश के भीतर एक ही शिक्षा–प्रणाली में दो तरह के नियम और व्यवस्थाएं क्यों है, वह भी स्वाधीन भारत में, जब देश में लोकतंत्र और समानता का कानून लागू है ?

स्थानीय–भाषा और अंग्रेजी : कौन किसके लिए ?

इसे समझने के लिए कुछ बातों या प्रश्नों पर गौर करना होगा– **एक,** देश का संपूर्ण शासन–प्रशासन किस भाषा में संचालित हो रहा है, आर्थिक–समृद्धि एवं सामाजिक–प्रतिष्ठा प्रदान करने वाली उच्च–स्तरीय सरकारी नौकरियों (निजी क्षेत्रों में भी) की भाषा क्या है ? **दो,** उनके लिए शैक्षणिक–योग्यता (भाषा सहित) क्या है और उस पर समाज के किस वर्ग/वर्गों का वर्चस्व है? **तीन,** उस योग्यता को अर्जित करने के लिए देश में उच्च–शिक्षा की भाषा क्या है, और उन तक किन वर्गों के लोगों की पहुंच है? **चार,** उच्च–शिक्षा प्राप्त कर देश के शासन–प्रशासन में जाने वालों की प्राथमिक एवं स्कूली–शिक्षा किस भाषा में हुई है–भारतीय भाषाओं में या अंग्रेजी में, क्योंकि यहीं से प्राप्त भाषाई–योग्यता उनकी उच्च–शिक्षा एवं शासन–प्रशासन में भागीदारी का मार्ग प्रशस्त करती है ? **पांच,** अंग्रेजी–माध्यम से किन वर्गों के बच्चे स्कूली–शिक्षा हासिल कर रहे हैं और मातृभाषा में किन वर्गों के ? **छः,** स्थानीय एवं अंग्रेजी भाषाओं का सामजिक प्रभाव कैसा है ?

इन प्रश्नों के उत्तर तलाशते हुए हमें अनेक ऐसे रोचक तथ्य मिलते हैं, जो हमारे देश की शिक्षा–प्रणाली एवं समाज के उक्त हिस्सों की दोगली मानसिकता को नग्न करके रख देते हैं। यह एक तथ्य है कि सरकारी कामकाज, विशेष रूप से उच्च–स्तरीय, जिनसे किसी देश की व्यवस्था नियंत्रित और निर्देशित होती है, की भाषा से शिक्षा की भाषा का सीधा और गहरा संबंध है।

शासन–प्रशासन में नौकरियों की

भाषा से संबंध

औपनिवेशिक-भारत में चतुर्थ-श्रेणी से लेकर उच्चतम प्रशासनिक पदों तक तमाम सरकारी नौकरियों से संबंधित परीक्षाएं अंग्रेजी-माध्यम में हुआ करती थीं, जिसमें अंग्रेजों के अहम् से भी अधिक उनकी भाषा-संबंधी दिक्कतें अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। इसलिए उनकी शिक्षा में भी अंग्रेजी भाषा प्रमुखता से शामिल थी। लेकिन जब भारत आजाद हो गया, तब इस व्यवस्था को धीरे-धीरे बदल जाना चाहिए था और सरकारी नौकरियों में भर्ती-प्रक्रिया एवं उन पदों से संबंधित सभी कार्यों की भाषा भारतीय-भाषाओं में बदल जानी चाहिए थी। चूंकि किसी भी देश में उसके तमाम कार्यों की भाषा और शिक्षा की भाषा का परस्पर गहरा संबंध होता है, इसीलिए कोई भी देश अपने विद्यालयों-विश्वविद्यालयों में उन भाषाओं को बढ़ावा देता है, जिस भाषा/भाषाओं में उसके यहां विविध कार्य होते हैं, ताकि उसे बेहतर एवं योग्य लोग मिल सकें, जो देश एवं समाज के विकास में अपना योगदान दे सकें। इस कारण स्वत: ही शिक्षा की भाषा एवं सरकारी तंत्रों तथा उसकी नौकरियों के कार्यों की भाषा एक समान हो जाती है। किन्तु स्वाधीन भारत में ऐसा हुआ नहीं। यहां परोक्षत: दोहरे मापदंड अपनाये गये-वंचित वर्गों के लिए अलग नियम और साधन संपन्न 'सवर्ण-वर्ग' (सरकारी आंकड़ों में 'सामान्य वर्ग') के लिए अलग नियम।

सरकारी पाठशालाओं में स्कूली-शिक्षा की भाषा का उच्च-शिक्षा एवं सरकारी काम-काज से कोई सामंजस्य नहीं रहा है। यहां सभी तंत्रों में काम-काज की भाषा एवं उसके लिए उच्च-पदस्थ नौकरियों के लिए चयन या प्रतियोगिता-परीक्षाओं की भाषा को 'अंग्रेजी' ही रहने दिया गया, जबकि सरकारी शिक्षा-प्रणाली में शिक्षा की भाषा को अनिवार्यत: बच्चों की 'मातृभाषा' कर दिया गया। जबकि इसी शिक्षा-नीति के भीतर 'निजी अंग्रेजी-माध्यम' के विद्यालयों, जहां ये नियम बनाने वाले अधिकारियों के अपने बच्चे पढ़ते हैं, में बच्चों की अपनी स्थानीय-भाषा की बजाय अंग्रेजी को चुपके-चुपके जारी रखा गया।

जैसा कि कहा जा चुका है कि सभी क्षेत्रों के उच्च-पदों पर जिस भी वर्ग या समुदाय के लोग कार्यरत होंगे, वे ही संपूर्ण देश की सभी व्यवस्थाओं एवं तंत्रों को नियंत्रित करके संपूर्ण समाज को प्रभावित करेंगे, इसलिए यदि समाज का कमजोर तबका भी इन पदों पर आसानी से और पर्याप्त संख्या में पहुंचने लगे, तो निश्चित रूप से वह ऐसी व्यवस्थाओं का निर्माण करेगा, जो समाज में किसी एक वर्ग के वर्चस्व को तोड़ते हुए समानता की स्थापना करेगा। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद कुछ अंशों में ऐसा ही हुआ।

और भारत के वर्चस्ववादी **'सवर्ण-समाज'** की सबसे बड़ी चिंता इसी **'वर्चस्व के टूटने'** की है।

सरकारी नौकरियों में वंचितों के आने का 'साइड इफेक्ट' सवर्ण-समाज की चिंता का सबसे बड़ा कारण बना है।

नौकरियों में उम्मीदवारों के चयन एवं काम-काज की भाषा अंग्रेजी ही रहने दी गयी और वहां तक पहुंचने के लिए अपने बच्चों को अच्छे अंग्रेजी-स्कूलों में पढ़ाकर योग्य बनाया जाता है, जबकि वंचित-बच्चों की क्षमताओं को कुंठित करने के लिए सरकारी-विद्यालयों में अंग्रेजी को परोक्षत: हतोत्साहित एवं क्षेत्रीय-भाषाओं को प्रोत्साहित किया जाता है।

सभी जानते हैं कि कक्षा १ से ८ के दौरान बच्चों के भीतर शिक्षा एवं उसके लिए भाषा की नींव रखी जाती है और बच्चा उसके माध्यम से न केवल अपने वातावरण, समाज, देश, संस्कृति सहित ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों से परिचित होता है, बल्कि उस भाषा में अपनी शिक्षा के प्रति सहज भी बनता है।

किस समाज के बच्चे को अपनी स्कूली-शिक्षा की शुरुआत के लिए किस भाषा में 'सहज' बनाना है, यह सुनिश्चित करने के लिए वंचित-गरीब के बच्चों के लिए आंगनबाड़ी की व्यवस्था है, जहां कम-से-कम इन बच्चों के साथ अंग्रेजी में तो कोई बातचीत या व्यवहार नहीं होता है, जबकि सवर्णों के बच्चे 'प्ले स्कूल' में भेजे जाते हैं, जहां बच्चों के साथ अंग्रेजी में ही बातचीत होती है। और इस तरह दोनों वर्गों के बच्चों की भावी शिक्षा की नींव तैयार होती है।

इसके बाद वंचित समाज के बच्चे सरकारी विद्यालय भेजे जाते हैं, जहां वे शिक्षकों की सवर्णीय मानसिकताओं के बीच 'पढ़ते' हैं, और साधन संपन्न 'सामान्य-वर्ग' के बच्चे बेहतरीन अंग्रेजी स्कूलों में जाते हैं, जिनकी एक-एक गतिविधि पर अभिभावक कड़ी नजर रखते हैं। मात्र भाषा का ही अंतर दोनों वर्गों में क्या-क्या परिवर्तन लाता है, यह भी कम दिलचस्प नहीं है।

भाषा और व्यक्तित्व-निर्माण

निजी विद्यालयों के बच्चे केवल अपनी अंग्रेजी भाषा के कारण आत्म-विश्वास से लबरेज होते हैं, जबकि इनकी तुलना में कई बार अपनी बेहतरीन तार्किक-क्षमता, ज्ञान और बौद्धिक-स्तर के बावजूद अपनी मातृभाषा में पढ़ने वाले विद्यार्थियों का मनोबल इतना डगमगाया होता है कि वे अपनी तुलना में उन ज्ञान विहीन लड़के-लड़कियों के सामने अक्सर विचलित हो उठते हैं, खासकर भारत की हिन्दी पट्टी के युवाओं का भाषाई-सत्य तो यही है। क्या ऐसा समाज के भीतर अंग्रेजी के पक्ष में अनुकूल माहौल बनाने से हुआ नहीं है, जिसकी तुलना में पिछले दो-तीन दशकों के दौरान स्थानीय भारतीय भाषाओं को महत्वहीन रूप में स्थापित करने की कोशिशें भी समानान्तर रूप से चुपके-चुपके हुई हैं ?

क्या भारत में इसी उद्देश्य से चुपके-चुपके सीमित संख्या में महंगे निजी बोर्डिंग-स्कूलों को प्रमोट नहीं किया गया, जो दो दशकों पहले तक समाज से बहुत दूर कहीं एकांत में चलते रहे, जिनमें प्राय: इन्हीं सवर्णों के बच्चे पढ़ते रहे हैं? और क्या इसी कारण ये महंगे बोर्डिंग-स्कूल आबादी की नजरों से बहुत दूर नहीं रखे गये, कि इन पर वंचित वर्गों की नजर न पड़े और वह सवर्ण-समाज की छुपी कूटनीतियों पर संदेह करते हुए अपने और उनके बच्चों की शिक्षा के बीच के इस भेद पर उनसे सवाल न करें?

और इन महंगे विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण अंग्रेजी शिक्षा दिला पाने की क्षमता प्राय: उसी सामान्य वर्ग के पास है, जिसके पास पीढ़ियों की लूट से इकट्ठी की गयी दौलत है, या जो बिजनेस के नाम पर भरपूर जोड़-तोड़ करना और प्रॉफिट या लाभ के नाम पर अपने कामगारों की मेहनत चुराना जानते हैं, अथवा व्यवस्था के भीतर पहले से ही अपने घुसपैठ बनाए हुए मोटी-मोटी तनख्वाहें डकारता है।

जबकि गरीब वंचित वर्गों की शिक्षा उन्हीं सरकारी विद्यालयों में होती है, जहां स्थानीय मातृभाषा में पढ़ाया जाता है, वह स्थानीय भाषा जिसका इस्तेमाल प्राय: न तो उच्च-शिक्षा में होता है, न उच्च-पदस्थ नौकरियों में।

अंग्रेजी-स्कूलों से पढ़कर यही सामान्य वर्ग अंग्रेजी आधारित उच्च शिक्षा में भी समस्त अवसरों को झपट लेता है एवं नौकरियों के मामले में भी लगभग सभी शक्तिशाली सरकारी पदों को भी। और इस प्रकार योग्यता के अभाव को हथियार बनाकर स्थानीय भाषा में शिक्षा



राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति ने सबसे पहले मातृभाषा में साक्षरता प्रसार का काम करना शुरु किया था। पहली प्रवेशिका का नाम था-पैली पोथी यह ढूंढाड़ी बोली की प्रवेशिका थी। दूसरी-प्रवेशिका थी-चामल पोथी यह हाड़ौती बोली की प्रवेशिका थी। फिर म्हारी पोथी नाम से मेरवाड़ी भाषा में बनी थी और फिर मेवाड़ी में भी और मारवाड़ी में भी। इन्हीं प्रवेशिकाओं के मार्फत हम साक्षरता के हजारों केन्द्र चला रहे थे। मगर धीरे-धीरे दकियानूसी नौकरशाही ने मातृभाषा में साक्षरता, शिक्षा को प्रोत्साहित करना बंद कर दिया। किसी को पता भी नहीं चला की बहुत मेहनत से सृजित की गयी, सुचिंतित सामग्री का प्रचलन रोक दिया गया है। मातृभाषाओं को फिर से ठेंगा दिखा दिया गया है।

हासिल करने वाले वंचित वर्गों को यथा संभव वहां तक पहुंचने से रोक दिया जाता है।

शिक्षा की भाषा और सरकारी नौकरियां

ऐसी स्थिति में न्यूनतम योग्यता भी प्राप्त नहीं कर पाने पर 'आरक्षण' के बावजूद वंचित वर्ग स्वत: ही तमाम अवसरों से बाहर हो जाते हैं, और निजी संस्थानों में उच्च पदों पर तो अपने आत्मविश्वास में कमी और योग्यता के अभाव में वैसे भी नहीं जा पाते हैं।

स्वाधीनता प्राप्ति के समय से ही चला आ रहा सरकारी मजबूरियों का यह दायरा धीरे-धीरे वहां तक विस्तृत हो गया, जहां तक वह बिना किसी खास जोखिम के विस्तारित किया जा सकता था।

तो क्या सरकारी विद्यालयों के बच्चों की शिक्षा उनकी अपनी मातृभाषा में दिये जाने की वकालत का यह सारा खेल इसी उद्देश्य से खेला जाता है कि वंचित वर्गों को इस प्रतियोगिता से बाहर रखा जा सके ? क्यों नहीं अनिवार्यत: ये व्यवस्थाएं हों ? इन तमाम बातों को निष्कर्ष रूप में समझने की कोशिश करें, तो यह कहा जा सकता है कि भारत में साधन-संपन्न वर्चस्ववादी सवर्ण समाज बेहतरीन **अंग्रेजी** माध्यमों के निजी विद्यालयों से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा हासिल करता है और उसके बल पर देश की समस्त व्यवस्थाओं पर केवल और केवल अपना नियंत्रण रखता है। इसके लिये तमाम प्रतिष्ठित एवं शक्ति के स्तंभ उच्च पदस्थ सरकारी नौकरियों के काम काज की भाषा को अंग्रेजी में ही किये जाने की व्यवस्था रखी गई है और उसको बदलने नहीं दिया गया है- औपचारिक अनौपचारिक दोनों तरीकों से। और गरीब वंचित वर्गों के बच्चे, जो प्राय: सरकारी विद्यालयों में ही पढ़ते हैं, अंग्रेजी पढ़कर उन प्रतिष्ठित एवं शक्ति संपन्न सरकारी पदों तक न पहुंच सकें, इसके लिए सरकारी विद्यालयों में बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा की भाषा को स्थानीय-भाषा ही रखने की पुख्ता व्यवस्था की गयी है। हालांकि इनके साथ ही कुछ अन्य व्यवस्थाएं भी समानान्तर रूप से की गयी है।

इस **दोमुंही** व्यवस्था को देखना हो तो उनके तर्क देखने चाहिए। लेकिन व्यापक सवर्ण समाज द्वारा यदि यह तर्क दिया जाता है कि बच्चों में पढ़ाई के प्रति रुझान पैदा करने के लिए सरकारी-विद्यालयों में स्कूली-शिक्षा उनकी अपनी मातृभाषा में होनी चाहिए, तब क्यों नहीं देश के सभी बच्चों की स्कूली शिक्षा अनिवार्यत: उनकी अपनी मातृभाषा में ही होनी चाहिये, चाहे वे सरकारी स्कूलों के बच्चे हों या निजी स्कूलों के ? बल्कि इससे भी आगे बढ़कर अनिवार्यत: सभी बच्चों को एक जैसे सरकारी या एक जैसे निजी विद्यालयों में क्यों नहीं भेजा जाना चाहिये, जिसका सारा खर्च राज्य उठाये, जैसे अभी उठाती है। और क्यों नहीं अध्यापकों को अनिवार्यत: बच्चों के उनकी कक्षा-स्तर तक पढ़ लिख पाने के लिए जिम्मेदार बनाया जाए ?

और यदि यह धूर्ततापूर्ण तर्क दिया जाता है कि **एक लोकतांत्रिक** देश में यह तो हमारी पसंद-नापसंद का मामला है कि हमारे बच्चे कहां पढ़ेंगे, तब क्यों नहीं यह प्रावधान किया जाना जरूरी है कि समस्त सरकारी कर्मचारियों के बच्चे अनिवार्यत: सरकारी स्कूलों में ही पढ़ेंगे, और जिन्हें अपने बच्चों को निजी अंग्रेजी स्कूलों में पढ़ाना हो, वे सरकारी नौकरी छोड़ दें ? आखिर ऐसे प्रावधान तो पहले भी बने ही हैं, जैसे अनेक राज्यों में दो बच्चों वाले लोगों को ही सरकारी नौकरियों में जाने या चुनाव लड़ने की अनुमति है।

इसके साथ ही, अनिवार्यत: समस्त सरकारी नौकरियों में भर्ती-प्रक्रिया एवं कार्य की भाषा भी अंग्रेजी से हटाकर भारतीय भाषाएं की जानी चाहिए। और यदि दुनिया के साथ सामंजस्य बिठाने का तर्क देकर सरकारी काम काज की भाषा अंग्रेजी को ही बनाए रखना अनिवार्य हो तो, भारत के सभी बच्चों के लिए स्थानीय भाषा के साथ-साथ अंग्रेजी में भी पढ़ाई को अनिवार्य किया जा सकता है।

इस तरह जो भी व्यवस्था बने, वह सभी पर एक समान लागू हो, ताकि सभी बच्चे समान रूप से सक्षम बन सकें, न कि केवल कोई वर्ग विशेष? अन्यथा सरकार की समस्त शिक्षा नीतियां उनकी सवर्णीय जातिवादी मानसिकता से उपजी दोगली प्रवृत्ति और कुटिल कूटनीति के अलावा और कुछ भी नहीं है। ❑



मधु पंत

❑

शिक्षाविद् मधु पंत का प्रस्तुत आलेख बरसों पुराना है। एनसीईआरटी की पुरातन पत्रिका प्राथमिक शिक्षा के किसी अंक से लिया जा रहा है। मधु जी उदारता है कि उन्होंने हमें भी इसके प्रकाशन की अनुमति फोन पर दे दी है। बालक शिक्षण में मधु जी का नाम सर्वज्ञात है और बाल साहित्य के लेखन में भी वे अपनी रचनात्मक पहचान रखती हैं।

मधु जी दिल्ली के बाल भवन की निदेशक भी रही हैं और शिक्षा–विमर्श में बरसों से सक्रिय रही हैं। उनका बाल–वत्सल स्वभाव वात्सलय की रक्षा के लिए कटिबद्ध रहा है और वे बालकों के शिक्षण को सदा बाल–वत्सल बनाये रखने में सजग रही हैं। हमारी समिति में चल रही आनन्द शाला के संदर्भ में मधु जी का चिंतन बहुत प्रासंगिक है। इसलिए प्रस्तुत है यह लेख।❑ सं.

सीखने का आनंद

❑

बच्चे ईश्वर की बनायी अनुपम, अलभ्य, अनमोल कृति हैं... जिससे कायम है जीवन की धारा, परंपराएं, संस्कृति और शाश्वत मूल्य। यह अनुपम कृति अर्थात् बच्चा जितना सुकोमल है उतना ही जिज्ञासु भी... वह प्रकृति और प्राकृतिक दृश्यों से कभी चमत्कृत होता है तो कभी आनंदित। यह चमत्कार और आनंद ही उसे अपने आस–पास होने वाली हर घटना के कारणों की खोज करने को प्रेरित करता है। उसका छोटा–सा मस्तिष्क सदैव सब कुछ जानने को आतुर, व्याकुल रहता है। हर वस्तु के प्रति उसे कौतूहल है– और हर कारण का निवारण उसके हृदय को आनंद से भर देता है... वह जितना आह्लादित होता है उतना ही सीखने के लिए और तत्पर हो उठता है। यही कारण है कि उसके अंदर हर समय ‘क्या?’ ‘क्यों?’ और ‘कैसे?’ जैसे प्रश्न भरे रहते हैं।

बच्चे के सीखने में उसकी इन जिज्ञासाओं का शांत होना बहुत जरूरी है। आज की शिक्षण पद्धति में बच्चे के सीखने पर सबसे अधिक बल दिया जाता है, क्योंकि कोई भी शिक्षा तब तक अर्थहीन है जब तक वह सिखाये जाने वाले तक न पहुंचे। सिखाना और सीखना शिक्षा के दो पहलू हैं। सिखाये जाने वाले तक शिक्षा का पहुंचना भर अहम नहीं है बल्कि आवश्यक है बच्चे का सीखना।

आवश्यकता है बच्चे के मन को जानने की। बाल मनोविज्ञान के सहारे कैसे बच्चे को सीखने के लिए तत्पर किया जाये? क्या तैयारी की जाये कि जो कुछ बच्चे को सिखाया जाये उसे वह सुगमता से सीख जाए? किस विधा का प्रयोग करें कि जो कुछ सिखाया जा रहा है वह रोचक हो सके?

शिक्षा में रोचकता का समावेश होना सीखने के लिए सबसे आवश्यक है। जिस काम में जितनी रोचकता होगी, बच्चा उसे उतनी ही तत्परता से सीखेगा। अब प्रश्न यह उठता है कि सीखने में यह रोचकता भला कैसे लायी जा सकती है? रोचकता वाली यह बात शायद कई लोगों के गले से नीचे भी न उतरेगी। उनकी दृष्टि में गिनती, अक्षर ज्ञान, पहाड़े, गणित, विज्ञान के मूल सिद्धांत आदि तो बच्चे को अभ्यास द्वारा ही सिखाये जाते हैं उनमें रोचकता का भला क्या काम? कई व्यक्तियों का यह मत भी हो सकता है कि शिक्षा में रोचकता ही रोचकता भर दी जाये तो केवल उसके कौतुक

और आनंद में ही बच्चा रह जायेगा और मूल शिक्षा पक्ष अछूता ही रह जायेगा।

यदि शिक्षा का मूल केंद्र बच्चा होगा तो उसे सीखने में आनंद आयेगा। इसके लिए हमें अवश्य ही शिक्षा विधि में आमूल परिवर्तन लाना होगा ताकि शिक्षा बच्चे के मन की, उसकी रुचि के अनुसार, उसकी आयु के अनुरूप, उसकी जानकारी एवं पूर्ण ज्ञान को दृष्टि में रख कर दी जा सके।

जिज्ञासु, कौतूहल प्रिय और नवीनता के प्रति सदैव उत्सुक रहने वाले बालमनों की सबसे प्रिय वस्तु है खेल। हर बच्चे के भीतर खेल के प्रति विशेष आकर्षण है। वह खेल-खेल में कई ऐसी कठिन बातें सीख सकता है जो अन्यथा संभव सी नहीं लगतीं। बाल गीतों के माध्यम से शुद्ध ज्ञान, कहानी के माध्यम से साहित्य तथा सामाजिक ज्ञान, नाटकों के माध्यम से इतिहास पढ़ाना हर वह शिक्षक जानता है जो बच्चों के मनोविज्ञान से परिचित है। गीतों के प्रति बच्चों को इतना लगाव होता है कि कई बार तो वे खेल-खेल में स्वयं गीत गढ़ लेते हैं। कई ऐसे गीत जिनके लेखकों का पता ही नहीं है शायद नन्हे-मुन्ने बालक-बालिकाओं ने स्वयं ही न लिखे हों-जैसे-

हरा समंदर गोपी चंदर
बोल मेरी मछली कितना पानी
कितना पानी कितना पानी
या
अक्कड़ बक्कड़ बम्बे बो
अस्सी नब्बे पूरे सौ
या
बरसो राम धड़ाके से
बुढ़िया मर गई फाके से

बच्चों की शब्दावली को बढ़ाने के लिए नये प्रयोग के रूप में उन्हें तुकबंदी का खेल सिखाया जा सकता है जैसे ताली और चुटकी के साथ तुक के शब्दों को बोला जा सकता है।

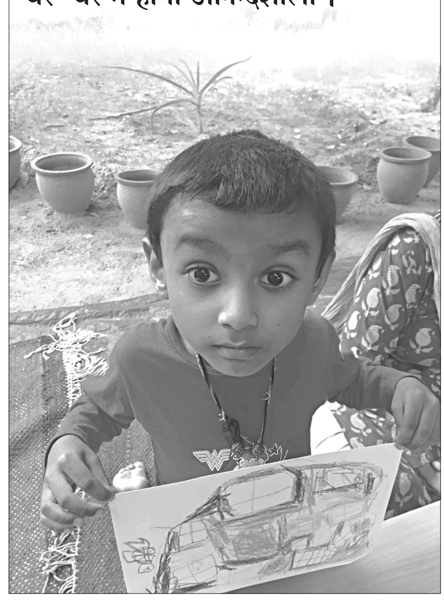
लाला, माला, काला, पाला, जाला, खाला, नाला, बाला, टाला, डाला, भाला...।

वर्गीकरण का ज्ञान देने के लिए बड़ा ही लोकप्रिय खेल है चिड़िया उड़... तोता उड़। इसमें हर उड़ने वाले पक्षी का नाम लेने पर बच्चे उड़ने का इशारा करते हैं किंतु बीच में न उड़ने वाले जंतु का नाम ले लिया जाता है जैसे-हाथी उड़... बच्चों को ध्यान रखना पड़ता है कि न उड़ने वाले जंतु का नाम लेने पर वे उड़ने का इशारा नहीं करें। इस तरह बच्चों को खेल का आनंद तो मिलता ही है, साथ ही बहुत सी ऐसी बातें भी सीख जाते हैं जिन्हें सिखाने में समय और मेहनत ज्यादा लगती है। इस तरह सिखायी गयी बातों का एक और भी फायदा है कि इसमें बच्चे की पूरी तरह भागीदारी होती है।

बच्चों की शिक्षा में स्वयं करके सीखने के लिए न मालूम कितने प्रयोग किये जा सकते हैं। बच्चे के लिए तो सारी प्रकृति एक प्रयोगशाला है जहां वह हर तरह के अन्वेषण कर सकता है। छाया क्यों बनती है; सुबह-शाम छाया लंबी क्यों होती है; रंगों से खेलते-खेलते कैसे दो रंगों से मिल कर नए रंग बन जाते हैं; दो चीजें टकराती हैं तो आवाज क्यों आती है; चीजें क्यों तैरती हैं; क्यों डूबती हैं; काली चीजें गर्मी ज्यादा क्यों सोखती हैं; चीजें नीचे क्यों गिरती हैं; चिड़िया क्यों उड़ती है; इंद्रधनुष के सात रंग कहां से आते हैं? आदि आदि न मालूम कितने प्रश्न हैं जिनका उत्तर बच्चा स्वयं अनुभव करके जान सकता है। तरह-तरह के पशु-पक्षी, जीव-जंतु, पेड़-पौधे, हवा, मिट्टी, पानी सभी कुछ तो उसकी प्रयोगशाला के अंग हैं बस उसे थोड़ी सी छूट दीजिये-थोड़े अनुभव स्वयं समेटने दीजिये, उसकी जानने की भूख को पनपने दीजिये और उसे अपने अनुभवों के आधार पर बटोरी जानकारी के सत्यापन के लिए कुछ अवसर दीजिये... बस देखिए एक नन्हा विज्ञानी तैयार हो गया।

मिशन ताना-बाना

हर घर जब होगा पोथी-घर तब घर-घर होगा आजीवन शिक्षा का आनन्द-केन्द्र। घर-घर में होगी आनन्दशाला।



समिति में चल रहे आनन्द शाला के बच्चे



समिति में चल रहे आनन्द शाला के बच्चे

जीवंत हो उठता है। उसके पात्र सामने बोलते हैं, अभिनय करते हैं और दर्शक बच्चे अपने आपको उससे आत्मसात कर लेते हैं, जोड़ लेते हैं। तब उस नाटक से आनंद तो मिलता ही है साथ ही जो चीज

यदि शिक्षक अपनी शिक्षा में थोड़ा सा भी लचीलापन रखे, थोड़ी विविधता और नयापन लायें, बच्चों को स्वयं काम करने की छूट दें फिर देखिए वे आपको भी पीछे छोड़ देंगे... हमने तो यहां तक प्रयोग किये हैं कि बच्चे स्वयं की परिकल्पना के आधार पर वैज्ञानिक उपकरण बनाते हैं - स्वयं रचना करते हैं और उनका संयोजन, मंचन करते हैं, अपनी पुस्तक खुद तैयार करते हैं... अपने नाटक लिखते हैं, लिखी कहानी या कविता के आधार पर चित्रांकन करते हैं। अधूरी कविता पूरी करते हैं उनकी रचना शक्ति का हम बड़े अंदाजा भी नहीं लगा सकते ।

बच्चे को स्वयं करने के अवसर देने के लिए हर माध्यम का उपयोग शिक्षा में हो सकता है। चित्रों से, नाटक से, गीतों से, कठपुतली से, प्रयोगों से, खेलों से, हास्य व्यंग्य से, कार्टून से, क्या कुछ नहीं हो सकता? यदि इतिहास को नाटक और कठपुतली द्वारा पढ़ाया जाये तो वह एक बीती हुई बात न रह कर

रटा-रटा कर सिखानी कठिन लगती थी बड़ी आसानी से सिखायी जा सकती है। बच्चों की दुनिया में हास्य, व्यंग्य की अपनी अलग ही जगह है। यदि शिक्षक थोड़ी सी सूझ-बूझ से इनका प्रयोग करे तो सीखने वाले के आनंद का ठिकाना नहीं रहता।

यदि शिक्षा में और भी प्रयोग किये जायें, लोक परंपरागत शैली में सिखायी जाने वाली वस्तु प्रस्तुत की जाये तो उसका आनंद ही विलक्षण होता है। नौटंकी शैली में विज्ञान कथा प्रस्तुत की जाये तो देखिए क्या आनंद आयेगा। बच्चों को भोजन में खनिज लवण, विटामिन की बातें बोझिल लगती हैं चिंता की क्या बात है? खनिज, लवण, विटामिन, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट का कवि सम्मेलन करा डालिए...। कक्षा के बच्चे अलग-अलग पात्र बने मंच पर अपना-अपना यशगान कर रहे हैं, स्वयं आनंदित हो रहे हैं और आपका सिखाने का मकसद स्वत: पूरा हो रहा है...

बच्चा हर नवीनता के प्रति सहज ही आकर्षित होता है। नयी चीज के प्रति उसमें उत्सुकता का भाव आ जाता है। उत्सुकता का यह भाव उसे सीखने के लिए तत्पर बना देता है अत: शिक्षण विधि के हर नये प्रयोग बच्चे की उत्सुकता को बढ़ाकर उसे आनंद देते हैं। आप सीधे पाठ पढ़ाने के स्थान पर दो भागों में कक्षा को बांटकर एक प्रश्नोत्तरी करा दीजिए फिर देखिये बच्चों के उत्साह को, उनके आनंद को।

बच्चा हर वस्तु को स्वयं छू कर, अनुभव करके जानना चाहता है तो करने दीजिये उसे सारे अनुभव खुद। क्या जरूरत है मौखिक रूप में यह बताने की कि वर्षा का पानी वनस्पति रहित मिट्टी को काटता है? दो तरह की मिट्टी लीजिए एक घास सहित और दूसरी बिना घास वाली। उसे खुद देखने दीजिये कि एक-सी पानी की धार डालने पर कौन-सी मिट्टी जल्दी कटती है... और फिर देखिए उसकी आंखों की चमक।

गीतों से बच्चों को स्वत: ही लगाव होता है, जन्म से ही मां की लोरी सुनकर वह बढ़ता जो है। हर विषय के तरह-तरह के गीत सुनाइये और फिर देखिए कि जो कुछ आप चाहते थे कितनी सहजता से और खुशी से वह सीख गया।

हर बच्चे को कल्पना करने में आनंद आता है - करने दीजिए उसे कल्पनाएं... तरह-तरह की नयी कल्पनाएं - उस कल्पना को अपने विषय का जरा सा आधार भर दीजिये ओर फिर देखिये... आप पिछड़ जाएंगे।

बच्चा किसी भी काम में लगातार ध्यान नहीं लगा पाता। विशेष तौर पर उस काम में जो उसकी रुचि का नहीं है... तो दीजिये ना उसे पाठ्यक्रम के बीच में खुली छूट... कम से कम दिये जाने वाले ज्ञान को उसके खुद के अनुभवों से जोड़कर तो देखिये और तब आप पायेंगे उसकी आंखों में एक विशेष चमक...।

सीखने की ललक हर बच्चे में होती है किंतु हर बच्चे के सीखने का क्रम व गति एक नहीं होती। कक्षा में बच्चों को समूह के रूप में काम करने के मौके दीजिए- विभिन्न परियोजनाओं के रूप में - फिर आप पाइयेगा कि आपने हर बच्चे पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दे दिया है... अपनी गति और क्रम कायम रखते हुए हर बच्चा सीख रहा है... सहज ही सीख पाने का यह आनंद उसे और अधिक सीखने और करने को प्रेरित करने लगेगा।

सच तो यह है कि शिक्षा का मकसद भारी बस्ते से लदा-फदा, परीक्षा एवं गृह कार्य के तनाव से त्रस्त, आपसी होड़ की कुंठा से ग्रस्त बच्चा नहीं है। यदि शिक्षा का मकसद बच्चे के सर्वांगीण व्यक्तित्व को विकसित करना है तो कुंठा, तनाव और शारीरिक बोझ से थका बच्चा जो शारीरिक रूप से अक्षम और मानसिक रूप से बौना हो रहा है हमारी किसी परिभाषा में नहीं आता। जिस प्रकार एक बीज के स्वाभाविक विकास के लिए उसे उचित भूमि, जल, वायु, प्रकाश, ताप सभी कुछ चाहिए। उसी तरह बच्चे के स्वाभाविक विकास के लिये उसे स्वत: विकसित होने के अवसर देने वाला वातावरण चाहिए जिसमें सर्वप्रमुख काम करने के अवसर देना है। बच्चे के भीतर आत्म-प्रकाशन और आत्म-अभिव्यक्ति की एक नैसर्गिक भूख होती है। यदि उसे आत्म-प्रकाशन के अवसर न मिलें तो उसका व्यक्तित्व मुरझाने लगता है - वह चाहता है अभिव्यक्ति देना ओर इसी से उसे मिलती है आत्मदृष्टि। इसी से होती है उसके अहं की परिपुष्टि। इसी से उसे मिलता है सृजन का सुख...। सृजन का यही सुख बच्चे को बनाता है रचनाकार, शिल्पकार, कलाकार, साहित्यकार, शिक्षाविद्, वैज्ञानिक या दार्शनिक। स्वयं की सर्जना से बच्चा जो कुछ सीखता है उसी की उसके जीवन में एक सुदृढ़ छाप बन जाती है एक प्रसिद्ध चीनी कहावत है-

मैं जो कुछ सुनता हूं भूल जाता हूं देखता हूं वह याद रखता हूं जो कुछ स्वयं करता हूं सीख जाता हूं स्वयं करके यह सीख पाना इसीलिए संभव होता है क्योंकि इस सीखने में एक सुखद भाव है- अपनी उपलब्धि का भाव, आत्म-तुष्टि का भाव, तृप्ति का भाव, आत्म-सम्मान का भाव और अपनी विजय का भाव।

आज यह हमें सोचना है कि हम अपनी भावी पीढ़ी कैसी चाहते हैं? कुंठा और तनाव से ग्रस्त, पाठ्यक्रम और पुस्तकों के बोझ से लस्त-पस्त या स्वयं सीख सकने के उल्लास की चमक से परिपूर्ण, आनंद के अतिरेक से संपूर्ण? यदि हम ऐसा कदम उठा पायें तो हमें शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना होगा, सारे पाठ्यक्रम को और शिक्षाविधि को पलटना होगा। यही होगा हमारे चरम सुख का क्षण क्योंकि यह हमारा नयी शिक्षण विधि को स्वयं आजमा कर सीखने के सुख का क्षण होगा।❑

मकान नं.२२१, डीयर वुड चैस, निर्वाण कंट्री, सेक्टर, ५०, गुड़गांव-१२२०१८ (हरियाणा)
मो. -०९९-५८०-७७५५०



समिति में चल रहे आनन्द शाला के बच्चे

खेल के देखो, खेल के जानो आस–पास को तुम पहचानों!

❑

रुचि वर्मा, इन्दु कुमार

❑

पर्यावरण प्रदूषण आज एक ज्वलंत समस्या बनता जा रहा है। पर्यावरण जो हमारा रक्षा-कवच है इसी की रक्षा हमारे लिए चुनौती बनती जा रही है। इससे निकलने वाला कूड़ा–कचरा एवं कारखानों के अपशिष्ट पदार्थ नदियों एवं जलाशयों में गिरकर इन्हें निरंतर प्रदूषित कर रहे हैं। खुली भूमि में डाले जाने वाले कूड़े–कचरे में बहुत तरह के जहरीले रसायन होते हैं जो मृदा को दूषित कर रहे हैं। बड़े–बड़े कल–कारखाने, वाहन एवं बिजली तापघर भारी मात्रा में धुआं उगलकर वायु प्रदूषण का कारण बनते हैं। ध्वनि प्रदूषण आधुनिक समाज की एक और देन है। कल–कारखाने, तेज चलने वाले वाहन एवं सामाजिक समारोहों में बजने वाले लाउडस्पीकर भीषण शोर मचाकर ध्वनि प्रदूषण फैला रहे हैं।

प्रथम आवश्यकता है, पर्यावरण के प्रति चेतना एवं संवेदनशीलता विकसित करने की ताकि प्रदूषण को नियंत्रित किया जा सके। सरकारी स्तर पर इस दिशा में अनेक प्रयास किये जा रहे हैं परंतु पर्यावरण प्रदूषण को रोकने में हम सभी को योगदान देना चाहिए। एक शिक्षक होने के नाते इस ओर हमारा दायित्व और भी अधिक बढ़ जाता है। हम शिक्षक पर्यावरण रक्षा संबंधित उचित मूल्य एवं अभिवृत्तियां, विद्यार्थियों में विकसित कर सकते हैं। शिक्षक का स्वयं का आचरण ऐसे मूल्य विकसित करने का सशक्त माध्यम है। हम स्वयं गंदगी न फैलायें और अपने आस–पास का वातावरण स्वच्छ रखने में सहयोग दें। घर, पास–पड़ोस एवं विद्यालय के परिवेश को स्वच्छ रखें। जहां–तहां कूड़ा कचरा न तो फैलायें, न फैलने दें क्योंकि कोरी बातें एवं भाषण बच्चों पर उतना प्रभाव नहीं डालते, जितना कि योजनाबद्ध तरीके से किये गये प्रयास। खेल एक ऐसा सशक्त माध्यम है, जिसके द्वारा जटिल से जटिल बात सहज एवं सरल तरीके से बच्चा सीख जाता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए एक खेल की योजना तैयार की गयी। इसके माध्यम से बच्चों में खेल–ही–खेल में पर्यावरण प्रदूषण के कारणों एवं इसके निवारण संबंधी चेतना विकसित की जा सकती है। खेल के निर्माण में निम्न उद्देश्यों को ध्यान में रखा गया–

- बालक को प्रदूषण के विभिन्न प्रकारों से अवगत कराना।
- वायु, जल, मृदा एवं ध्वनि प्रदूषण के कारणों के बारे में जानकारी प्रदान करना।
- प्रदूषण रोकथाम के उपायों के प्रति चेतना उत्पन्न करना।
- बालक पर्यावरण सुरक्षा के प्रति जागरुकता उत्पन्न करना।
- पर्यावरण सुरक्षा में बालक की भूमिका को स्पष्ट करना।
- प्रदूषण रोकथाम के प्रति दायित्व की भावना विकसित करना।



समिति में चल रहे आनन्द शाला के बच्चे



समिति में चल रहे आनन्द शाला के बच्चे

६. खेल को परिकल्पित रूप देना

बीच में वर्गाकार पर्यावरण संरक्षित क्षेत्र (हरित क्षेत्र) रखा जायेगा। इसके चार किनारों पर निम्नांकित चित्रानुसार प्रत्येक प्रदूषण के लिए बनाये गये वर्गाकार चार्ट लगाये जायेंगे। इस खेल के लिए खिलाड़ियों की संख्या चार होगी।

सामग्री- चार गोटियां (विभिन्न रंगों की), एक पासा।

खेल की निर्माण विधि

१- कारकों की पहचान

खेल निर्मित करने के लिए सर्वप्रथम वायु, जल, मृदा एवं ध्वनि प्रदूषण से संबंधित उन कारकों पर विचार किया गया, जो प्राथमिक स्तर के बालक के दैनिक जीवन से संबंधित हैं अथवा जिनसे किसी-न-किसी रूप में बालक का सामना होता है।

२. प्रदूषण के कारणों एवं निवारणों की सूची

जल, वायु, मृदा एवं ध्वनि प्रदूषण के कारणों एवं निवारणों की सूची तैयार की गयी। प्रत्येक प्रकार के प्रदूषण के कुछ कारण एवं कुछ निवारण छांटे गये जो बालकों के लिए बोध-गम्य हों।

३. चित्रों का संग्रह

प्रदूषण के कारणों एवं निवारणों से संबंधित चित्रों का संग्रह किया गया।

४. रंगों का चयन

रंगों का चयन जल के लिए नीला, वायु के लिए आसमानी, मृदा के लिए भूरा और ध्वनि के लिए ध्वनि-चिह्न की पृष्ठभूमि में हल्के पीले रंग का किया गया। बीच के पर्यावरण सरंक्षित क्षेत्र के लिए हरा रंग चुना गया।

५. खेल की योजना

प्रदूषण के चार प्रकारों को ध्यान में रखते हुए चार चयनित रंगों के आयताकार कागजों पर ३५ खाने बनाये गये। सभी खानों को अंकित किया गया। कुछ खानों में चयनित चित्र चिपकाये गये। प्रदूषण फैलाने वाले चित्रों पर सांप दर्शाये गये एवं इसके रोकथाम के उपाय वाले चित्रों पर सीढ़ियां दर्शायी गयी, जिसके अनुसार बच्चा खेलते हुए क्रमशः पीछे या आगे जायेगा।

खेल की विधि

खेल की दो विधियां प्रस्तुत हैं

प्रथम विधि

खिलाड़ी अलग-अलग रंगों की गोटियां ले लें। प्रत्येक खिलाड़ी एक नंबर आने पर खेल की शुरुआत करेगा। उसके बाद जितना भी नंबर आयेगा खिलाड़ी को उतने ही खाने आगे अपनी गोटी को बढ़ाना होगा।

कुछ खानों में चित्र बने हैं जो पर्यावरणीय प्रदूषण संबंधी क्रियाएं एवं उनकी रोकथाम के उपायों को दर्शाते हैं। खेलते हुए यदि खिलाड़ी प्रदूषण पैदा करने वाली क्रिया पर आ जाता है तो उसे सांप काट लेगा व उसे पीछे हटना होगा। बालक विचार

करेगा कि सांप ने उसे क्यों काटा? इसी प्रकार यदि खिलाड़ी प्रदूषण रोकथाम के उपायो वाले चित्र पर आता है तो उसे सीढ़ियां चढ़ कुछ खाने आगे बढ़ने का मौका मिलेगा। (इस क्रिया का औचित्य बच्चे को पर्यावरण के हित एवं अहित में होने वाली क्रियाओं के प्रति चेतना उत्पन्न करना है।)

इस प्रकार खेलते हुए जो खिलाड़ी सर्वप्रथम मध्य के हरित खाने में पहुंचेगा वह प्रथम विजेता होगा। इसके बाद तीन खिलाड़ी, फिर दो खिलाड़ी खेल को खेलेंगे तथा द्वितीय एवं तृतीय विजेता बनेंगे।

द्वितीय विधि

शिक्षक कक्षा में इस खेल का उपयोग 'प्रदूषण' संबंधित जानकारी देने में कर सकता है। इसके लिए २ इंच - २ इंच आकार की लोहे की पत्ती पर खेल को बड़े आकार में बनाकर चिपका लें या पेंट से बना लें एवं उसे दीवार पर टांग लें। एक चकरी (स्पिन व्हील) बना लें (गत्ते की अलग-अलग व्यास की दो गोल चकरियां काटें। बड़ी चकरी को प्रकार की सहायता से छः बराबर भागों में बांटें। प्रत्येक भाग को अंकित करें। छोटी चकरी को भी छः बराबर भागों में बांट कर किसी एक भाग में छोटी खिड़की काटें। दोनों चकरियों को संकेन्द्रित रख नट-बोल्ट की सहायता से कस लें। घुमावदार चकरी को दीवार पर टांग लें। घुमावदार चकरी को दीवार पर टांग लें)। चुंबकीय गोटियां लें ताकि लोहे की पत्ती पर बने खेल पर चिपकायी जा सकें।

कक्षा के विद्यार्थियों को चार समूहों में बांट लें एवं हर समूह से एक बालक आकर छोटी चकरी को घुमाये। जिस अंक पर चकरी की खिड़की रुके, उतने अंक उस समूह को गोटी आगे बढ़ जायेगी। इस प्रकार जो समूह सर्वप्रथम हरित क्षेत्र में पहुंचेगा वही विजेता घोषित होगा। अन्य समूह खेल जारी रखेंगे एवं द्वितीय व तृतीय विजेता होने का अवसर पायेंगे।

इस खेल के माध्यम से बच्चे खेल-ही-खेल में अपने आसपास के पर्यावरण को न केवल जान पाएंगे बल्कि उसके संरक्षण के प्रति सचेत भी होंगे। इसी प्रकार के अन्य खेल किसी भी विषय के लिए बनाने में छात्रों की सहीभागिता ली जाये तो उनमें खोज एवं अन्वेषण की जिज्ञासा भी विकसित होगी।

यह तो था पर्यावरण के प्रति जागरुकता एवं संरक्षण की भावना विकसित करने के लिए बनाया गया खेल। इस प्रकार के अन्य कई खेल बनाए जा सकते हैं तथा उनके माध्यम से बच्चों में कई विषयों के प्रति जागरुकता लायी जा सकती है। खेल-खेल में सीखना जहां बच्चों को आनंदित करेगा वहीं आपके भीतर भी आत्मविश्वास जगायेगा कि हम भी बच्चों के लिए खेलों का विकास कर सकते हैं लेकिन ध्यान रहे कि खेलों के विकास में बच्चों का योगदान लेना न भूलें।❑



समिति में चल रहे आनन्द शाला के बच्चे

भाषा में रंगों के नाम

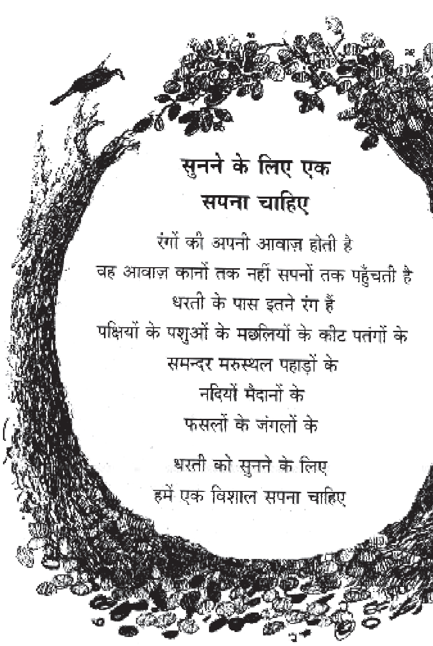
❑

रंगों का इंद्रधनुष होता है – एक सिरे पर लाल तो दूसरे सिरे पर बैंगनी ओर बीच में हरा, फिरोजी और नीला। हर भाषा इन रंगों को अपनी जरूरत के हिसाब से नाम देती है: कुछ भाषाओं में 'हरा' और 'नीला' रंग के लिए अलग-अलग शब्द होते हैं, तो कुछ में तो रंगों के लिए नाम ही नहीं होते।

लेकिन ऐसा क्यों हैं? वैकासिक भाषाविद् डैन डिडियू और मनोविज्ञानी आसिफा मजीद ने इसी सवाल का जवाब पता लगाया है। अध्ययन में उन्होंने पाया कि जिन इलाकों में सूर्य की भरपूर रोशनी होती है उन इलाकों की भाषा में इस बात की संभावना अधिक रहती है कि उनमें नीले और हरे रंग के लिए एक ही नाम हो। और ऐसा संभवत: ताउम्र अधिक प्रकाश के संपर्क में रहने के कारण होता है। तेज धूप के कारण आंखों में 'लेंस ब्रुनेसेन्स' नामक स्थिति बनती है जिसके कारण दो रंगों को अलग-अलग पहचानने में मुश्किल होती है।

एक अन्य परिकल्पना के अनुसार, जो लोग पानी के बड़े स्रोत – जैसे समुद्र या झील – के आसपास रहते हैं उनकी भाषा में 'नीले' रंग के लिए नाम होने की अधिक संभावना होती है। इसके अलावा, अगर कोई समुदाय नीले रंग में कपड़े रंगना शुरू करता है, तो यह भी उसकी भाषा में 'नीले' रंग के लिए नये नाम मिलने की संभावना को बढ़ाता है।

इस अध्ययन में शोधकर्ताओं ने इन सभी मुख्य सिद्धांतों को एक साथ खंगालने का सोचा। इसके लिए उन्होंने अंटार्कटिका को छोड़कर बाकी सभी महाद्वीपों के १४२ आबादी समूहों से भाषा संबंधी डेटा इकट्ठा किया। इनमें कोरियाई और अरबी जैसी बड़े पैमाने पर बोली जाने वाली भाषाओं से लेकर ऑस्ट्रेलिया और अमेजॉन में केवल कुछ सैकड़ा लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषाएं शामिल थीं। शोधकर्ताओं ने देखा कि प्रत्येक आबादी की मुख्य भाषा रंगों के लिए किन नामों का उपयोग करती है, और फिर इन नामों को प्रभावित कर सकने वाले कारकों का डेटा इकट्ठा किया- जैसे सूर्य के प्रकाश से संपर्क, या झील के नजदीक होना।



साइंटिफिक रिपोर्ट्स में शोधकर्ता बताते हैं कि कोई भाषा हरे रंग और नीले रंग में अंतर करती है या नहीं, इसमें प्रकाश से संपर्क महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भूमध्य रेखा के करीब वाले या वर्ष भर लगभग खुले आसमान वाले इलाकों (जैसे मध्य अमेरिका और पूर्वी अफ्रीका) की भाषाओं में 'हरे' और 'नीले' रंग के बीच फर्क काफी कम था। इससे पता चलता है कि ताउम्र तेज प्रकाश का संपर्क इन समुदाय में नीले-हरे रंग के भेद को मिटाता है। शोधकर्ताओं को अन्य दो सिद्धांतों के लिए भी समर्थन दिखा, झील के पास रने से 'नीले' रंग के लिए एक अलग नाम भी संभावना बढ़ गयी। और ऐसा ही उन्हें बड़े समुदायों के लिए भी दिखा। इसका मतलब है कि किसी भाषा में अलग-अलग रंगों को नाम देने में दृष्टि, संस्कृति और पर्यावरण, ये सभी कारक भूमिका निभाते हैं।❑

स्रोत फीचर्स से साभार

वैचारिक बहस छेड़ती एक किताब

आधुनिक विज्ञान को गांधी की चुनौती :

राजेन्द्र बोड़ा

❑

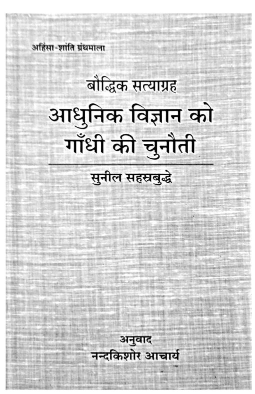
सुनील सहस्त्रबुद्धे एक नए स्वदेशी दर्शन को आकार देने का कार्य करते हैं जो भारतीय समाज की पुनर्रचना की बुनियाद बनाये। विज्ञान और दर्शन दोनों में औपचारिक उच्च शिक्षा हासिल कर वे गैरदलीय राजनीति में सक्रिय रह कर आधुनिक विज्ञान, दर्शन, राजनीति, किसान आंदोलन और गांधी के बीच रिश्तों की एक नयी समझ बनाने का प्रयास करते रहे हैं जिसके नतीजे के रूप में उनकी पुस्तक 'बौद्धिक सत्याग्रह आधुनिक विज्ञान को गांधी की चुनौती' हमारे सामने हैं जो अहिंसा शांति ग्रंथमाला के तहत प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर ने प्रकाशित की है।

यह पुस्तक मूलतः अंग्रेजी में १९९१ से १९९५ के बीच लिखी गयी और २००२ में प्रकाशित हुयी। अब यह हिंदी अनुवाद में पहली बार आयी है। लेखक के अंग्रेजी में जटिल दार्शनिक विचारों का सहज हिंदी में अनुवाद का दुरूह काम कवि, नाटककार, आलोचक, अहिंसा दर्शन, गांधी विचार और मानवाधिकार विमर्श के अध्येता नन्दकिशोर आचार्य ने बड़े ही कमाल से किया है। इस पुस्तक की सबसे पहली सफलता तो उसका बेहतरीन हिन्दी अनुवाद ही है।

गांधी ने कभी ऐसा बड़ा दावा नहीं किया कि वे किसी को अपना शत्रु मानते हैं या वे समूचे आधुनिक विज्ञान को चुनौती दे रहे हैं। महात्मा का सारा उद्यम समाज की पुनर्रचना का नहीं बल्कि सत्य और अहिंसा के जरिए सनातन परंपरा को ही उज्ज्वल बनाना था।

सहस्त्रबुद्धे यह अवधारित करते हुए कि गांधी एक नये युग के दार्शनिक हैं तथा उनके व्यापक दर्शन-तत्व मीमांसा, सत्ता विषयक मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, नीतिसापेक्षता, तर्क विधि, राजनीति के आधार पर विज्ञान के प्रति उनकी दृष्टि को निर्मित किया जा सकता है कहते हैं कि उन्हें समझ पाना थोड़ा मुश्किल है क्योंकि वह जिस विश्व की बात करते हैं, उससे आधुनिक चिंतन परिचित नहीं है।

लेखक यह तो मानता है कि गांधी सीधे तौर पर विज्ञान के बारे में बहुत कम ही बात करते हैं किंतु वह गांधी के बहाने अपने दर्शन की धरती जरूर बनाते हुए लगता है। जब सहस्त्रबुद्धे कहते हैं कि विज्ञान के प्रति गांधी की दृष्टि को निर्मित किया जा सकता है तब इसका अर्थ यह भी हुआ कि गांधी की दृष्टि को लेखक अपनी दृष्टि से निर्मित कर रहा है। लेखक का गांधीवादी तत्त्वमीमांसा और ज्ञान मीमांसा को पुनर्निर्मित करने का प्रयास है जो गांधी ने खुद निर्मित किया ही नहीं। गांधी की दृष्टि में तो सब कुछ नैतिकता से अनुप्राणित है लेखक का कहना सही है कि भारत की विज्ञान परंपरा उतनी ही जायज़ और वैध है, जितनी आधुनिक विज्ञान की परंपरा। इस देश में वैज्ञानिक पुनर्जागरण का आधार पारंपरिक विज्ञान के जीवंत प्रकारों एवं अभिव्यक्तियों में माना गया। मगर लेखक आधुनिक विज्ञान को गांधी की चुनौती का विचार अछूता बताते हुए उसी पर अपनी स्थापनाएं करता है और कहता है कि क्योंकि गांधी का मूल्यांकन आधुनिक विज्ञान के संदर्भ में नहीं किया गया है और न विज्ञान का ही मूल्यांकन सीधे गांधी दर्शन की दृष्टि से किया गया है, इसलिए यह पुस्तक मनुष्य की समझ के कुछ नये क्षेत्र खोलने और विकसित करने में मददगार हो सकती है।



यूरोप से शुरू हुए महायुद्ध के तमाम उपनिवेश स्वतंत्र हुए तथा साम्राज्यवाद को पीछे हटना पड़ा और अनेक देशों में आजाद सरकारें बनीं। किंतु इन देशों में पश्चिम जैसी राज्य प्रणाली तथा विश्व विद्यालयों में पश्चिमी सोच के दबदबे के चलते स्वदेशी परंपराओं का स्थान गौण हो गया।

क्या लोक विज्ञान तथा आधुनिक विज्ञान में आपसी विरोध है? क्या लोक विज्ञान अपना पुनर्भरण नहीं करता और पुरातन में ठस रहता है? जब लोक विज्ञान अपने को समाज की नयी जरूरतों के अनुरूप परिष्कृत करता है तब वह उसका आधुनिक विज्ञान हो जाता है। लेखक भी कहता है कि सभी ज्ञान लोकविद्या से शुरू होकर होते हैं और वापस लोक विद्या में आते हैं। मगर वह यह नहीं खोज करता कि ज्ञान, लोक विद्या से शुरू हो कर कहां जाता है, और क्या नया पाकर वापस लोक विद्या में लौटता है? नया पाकर क्या लोक विज्ञान आधुनिक नहीं हो जाता? फिर उसके आधुनिक विज्ञान से मुकाबले की बात क्यों की जाती है?

सहस्त्रबुद्धे अंत में यही घोषणा करते हैं कि आज हर परिवर्तन के रास्ते में आधुनिक विज्ञान सबसे बड़ा रोड़ा है...आधुनिक विज्ञान किसी भी मनुष्योचित कार्य में एक बड़ी बाधा है और उसको चुनौती दिये बगैर इस भूखंड के लोगों द्वारा अपनी सक्रियता फिर से प्राप्त करने के लिए आवश्यक वैचारिक ताना-बाना नहीं बुना जा सकता। अपनी इस अवधारणा को खड़ी रखने के लिए वे यह कहते हुए गांधी का सहारा लेते हैं कि गांधी द्वारा उद्घाटित ज्ञान आंदोलन ही वह समग्र सहारा है, जिसमें एक नयी सभ्यता के प्रस्थान बिंदु हैं।

जो लोक आंदोलन सहस्त्रबुद्धे चलाते हैं या जिसके वे हामी हैं वह एक राज्य आश्रित समाज है जिसमें राज्य से अपेक्षा है कि लोकविद्या के बल पर जीविका चलाने वाले परिवारों की से सरकारी कर्मचारी की आय के बराबर हो और आर्थिक क्षेत्र में बराबरी हो। लेखक भले ही साफ-साफ न कहता हो उसका रुझान वामपंथ की तरफ है और पूंजी का विरोध है। बाजार लूटता है इसलिए उसका विरोध है। सहस्त्रबुद्धे की एक स्पष्ट राजनैतिक दृष्टि है जो मार्क्स से प्रभावित है और जो पूंजी से मुक्त विश्व चाहती है और जिसका समर्थन वे गांधी से पाने का यत्न करते हैं। पर गांधी न पूंजीपतियों के विरोधी थे न वाम के समर्थक। वे पूंजी धारकों को ट्रस्टी मानते थे। इसीलिए लेखक गांधी को अपने वैचारिक ढांचे में ढालने की मशक्कत करता नजर आता है। उसे अपने आंदोलन को गांधी की स्वीकृति चाहिए।

भाप इंजन से लेकर कंप्यूटर तक आधुनिक विज्ञान के प्रकट परिणाम मशीन युग को परिभाषित करते हैं की स्थापना करते हुए सहस्त्रबुद्धे जब यह घोषणा करते हैं कि, गांधी इस मशीन के सम्पूर्ण विरोध में खड़े थे तो शायद गांधी को अपने विचार में ढालने में दूर तक चले जाते हैं। गांधी, रेल में सफर कर रहे थे, मशीन से चलने वाले पानी के जहाजों में यात्रा कर रहे थे, टेलीफोन का उपयोग कर रहे थे, साइकिल चला रहे थे, चरखा चला रहे थे और उसे परिमार्जित करने के लिए सतत प्रयासरत थे। उन्हें मशीन के सम्पूर्ण विरोध में खड़ा दिखाना बापू के साथ अन्याय है। शायद इसीलिए आगे जाकर लेखक इस विसंगति से बचाव का रास्ता यह कहते हुए खोजता है कि गांधी का विरोध उस आधुनिक मशीन के प्रति था, जिसका अर्थ ही समयांतर में बदल गया है। मगर लेखक यह अर्थ स्पष्ट करने के पचड़े में नहीं पड़ता।

लेखक का लोकविद्या का दृष्टिकोण एक रूमानी नजरिया नजर आता है जब वे कहते हैं कि लोगों की शक्ति का आधार लोकविद्या में होता है। लोकविद्या के बल पर वे केवल जीविका ही नहीं चलाते, बल्कि प्रकृति से और मनुष्यों के बीच संबंध बनाते हैं, सही- गलत की पहचान करते हैं, अन्याय का मुकाबला करते हैं और मूल्यों व तर्कों की बनावट से अपनी विश्वदृष्टि बनाते है। यहां यह सवाल जरूर उठता है कि लोक में वे जाति, धर्म और लिंग का भेद कैसे परिभाषित किया जायेगा?

लेखक की इस राय का कोई आधार नहीं है कि आज की तकनीक तथा विशेषज्ञता के दौर की बातें करने वाले लोग मानव हित तथा दर्शन इत्यादि पर चर्चा को गैर जरूरी समझते हैं। वास्तविकता तो इससे उलट है। जितनी चर्चा इस दौर के मूल्यों की अब हो रही है, वह सबके सामने हैं, यदि कोई उसे जानना चाहे।

सहस्त्रबुद्धे की पुस्तक की सफलता इसी में है कि वह वैचारिक बहस छेड़ती है। । ❑

अरणवाज खरास : एक शैक्षिक यात्रा

❑

समिति के कार्यक्रमों को बारीकी से समझने और अपने शिक्षा–विमर्श से लाभान्वित करने के लिए मुम्बई से प्रसिद्ध शिक्षाविद् अरणवाज खरास को समिति में आमंत्रित किया गया था। अरणवाज खरास शिक्षा चिंतक हैं, शिक्षाकर्मी हैं और वे कई संस्थाओं से जुड़ी रही हैं।

उन्होंने तीन दिन तक समिति के कामों को देखा, समझा। इनके अपने अनुभवों का लाभ लेने की दृष्टि से समिति में इनका एक व्याख्यान भी रखा गया। इसका लाभ दूर दराज के लोग भी लें इसके लिए इसे गूगल मीट पर वर्चुअल भी किया गया। काफी लोग इससे जुडे। बीकानेर उरमूल से श्रीमती सुशीला ओझा, श्री सुनील लहरी, श्री महावीर जी, श्री सूरज जी सहित कई साथी जुड़े। जयपुर में २५ से ज्यादा साथियों ने इसमें भाग लिया। दूसरा दशक, संधान, बजट अध्ययन संस्थान और अजीम प्रेमजी फाउंडेशन आदि के साथी भी आये।

इस व्याख्यान का विषय था– **शिक्षण** । शिक्षा के प्रति विचार रखते हुए उन्होंने कहा कि शिक्षा का नाम आते ही हमारे मन में प्रतीक के रूप में कौन सी छवि उभरती है? शिक्षण से हम क्या चाहते हैं? सभी ने रेखा चित्र के रूप में शिक्षा का प्रतीक प्रस्तुत किया। सभी ने अपने- अपने तरीके से शिक्षण को रेखा चित्र के माध्यम से उकेरा।

इसके अलावा समिति के कान्फ्रेंस हॉल में बैठे संभागियों ने भी बहुत उत्साह के साथ इस बैठक में भाग लिया। संभागियों ने श्रीमती अरणवाज खरास से कई सवाल किये।

२७ दिसम्बर को श्रीमती बटीना, प्रेम गुप्ता एवं गुनगुन थानवी के साथ श्रीमती अरणवाज जयपुर के बस्सी तहसील के झींझा गांव की महिलाओं से मिलने गयीं। यहां पर अनौपचारिक वार्ता हुई, गांव की महिलाओं के काम को बारीकी से देखा। झींझा गांव में सामाजिक युवा संगठन के सचिव रामदयाल जी पहले से ही वहां मौजूद थे। अरणवाज खरास ने वहां आखर सीख रहीं ग्राम सखियों से बातचीत की। उनका कहना था कि जितने भी आखर लिखना सीख रहे हैं उन्हें **पहचानने** की भी हमें हर समय कोशिश करते रहना है। यह आखर हमारी जिंदगी से कितने जुड़े हैं, इस पर भी हर समय विचार करते रहना जरूरी है। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने नाम व दूसरों के नाम की एक पट्टी तैयार करने की बात भी कही ताकि उनके नाम एवं अक्षरों से परिचित हो सकें। झींझा गांव में ग्राम सखी श्रीमती सुमन एवं रोशनी द्वारा दो समूह चल रहे हैं, इन दोनों समूह में एक खास बात जो हमें देखने को मिली–वह थी सभी महिलाएं आत्मविश्वास से भरी थी।





शिक्षण व्याख्यान का निष्कर्ष सामने आया कि जो चीजें शिक्षा में महत्वपूर्ण है वह बच्चों तक कैसे पहुंचे? जिंदगी से जुड़े अनुभव बालकों को बांटना जरूरी है। शिक्षा में मूल्य के रूप में समता को स्थापित करना चाहिए। यह हमें अपने व्यवहार में दिखाना होगा कि कक्षा में शिक्षक का व्यवहार कैसा हो? इस पर भी ध्यान देना जरूरी है। प्रकृति और जीवन आपस में जुड़े हैं उसे हम अलग नहीं देख सकते। ❑

आनन्द गणित की कार्यशाला

❑

समिति में दिसम्बर माह की २५ से २७ तारीख तक तीन दिन की एक अनूठी कार्यशाला का आयोजन किया गया। समिति में आनन्दशाला में आनन्द गणित शाला चली। इसमें कुल १२ बच्चों ने भाग लिया। १५ प्रतिभागियों की सीट थी। तीन दिन तक चली तीन–तीन घंटे की इस कार्यशाला में बच्चों ने खेल–खेल में बीज गणित सीखी। आम धारणा है कि गणित बहुत कठिन होती है लेकिन यहां इस प्रशिक्षण में गणित विशेषज्ञों ने इस धारणा को तोड़ा। बच्चे खूब उत्साह से गणित की पहेलियों को सुलझा रहे थे।

कार्यशाला के दूसरे दिन मुंबई से आयी अरणवाज खरास ने इस बीज गणित के प्रशिक्षण में गहरी रूचि दिखायी। इस कार्यशाला में बच्चों के साथ अपने अनुभवों का साझा किया। बच्चों को उपहार भी दिये। गणित पहेलियों को सुलझाने के लिये पूरा सामान एक बहुत खूबसूरत डिब्बे में बंद था। बालकों ने इसका खुशी से स्वागत किया।



गणित के विशेषज्ञ श्री हनुमान सहाय एवं श्री मनीष शर्मा ने इसके संचालन का जिम्मा संभाला। बच्चों को गणित के उपकरण दिये गये।



कार्यशाला के समापन पर बच्चों ने तीन दिन की अवधि को कम बताया। बालकों का कहना था कि यह कार्यशाला पांच या सात दिन की होनी चाहिए। कई बच्चों ने यह भी इच्छा जाहिर की कि हर माह ऐसी आनन्ददायी शाला चलनी चाहिए। इसका समय भी बढ़ाया जाना चाहिए।

समिति के अध्यक्ष श्री रमेश थानवी ने गणित की इस कार्यशाला को बहुत उपयोगी बताया और इसे निरन्तर चलाये जाने की मंशा प्रकट की। बच्चों के साथ आये उनके माता–पिताओं ने भी ऐसी कार्यशाला को जरूरी माना।

स्वपोषित इस कार्यशाला में प्रत्येक बच्चे से नाम मात्र का आर्थिक सहयोग भी लिया गया था।

❑



गर आ भी जाये मृत्यु

❑

विजय सिंह नाहटा

गर आ भी जाये मृत्यु
कदापि न आये कोहराम की तरह।
सहसा वो आये लोरी की तरह।
आये जैसे आता है
सावन के बाद भादों
बसंत के बाद पतझड़
आये जैसे आती है दिन के बाद रात
सुबह के बाद आती है शाम।
बहुत धीमे हौले से
एक पदचाप की तरह
लयबद्ध बढ़ता आये मृत्यु-रथ
अपवाद की तरह नहीं
वो आये रक्त में अपरंपार
प्रवाह की तरह
दाल में नमक की तरह घुली हुई,
वो आये।
तोपों की गगनभेदी सलामी
से अछूती
अखबारों की सुर्खियों से
बेहद बची हुई
वो आये अ-घटना की तरह
स्मृति पटल से ओझल
शोक सभाओं से नदारद....,
विलापरहित
सोलह आने खारी---
ओज में दमकती,
वो आये--- उत्सव की तरह।
जैसे आता है दिशाओं से एक
खामोश संवाद
और बह जाता गोया काल की
अंतहीन नदी में
न हतप्रभ करती अपनी आमद से
आये उन्मुक्त झोंके की तरह,
यकायक।
भला क्यूं न आये मृत्यु-
बारिश औ तूफान भरी
एक उदास रात्रि में
जैसे कि बदलती है
घोंसला चिड़ियाएं
इस डाल से उस डाल
इस प्रांतर से उस प्रांतर
बस कुछ कुछ आ जाये।
-- इसी तरह मृत्यु।❑

बी-६२, स्कीम-१०-बी,
गोपालपुरा बाईपास, जयपुर-३०२०१८
मो.७८५०८७३७०१

रैदास

❑

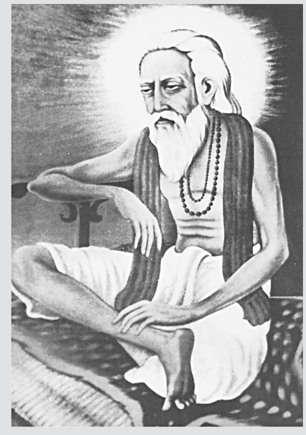
एक थे रैदास। नाम था रविदास। जाति के चमार थे। जूते गांठते थे। बनारस में रहते थे। गोस्वामी तुलसीदास के मित्र थे। कारण ये था कि रैदास अपना काम करते हुए प्रतिपल भजन करते रहते थे और राम नाम गाते रहते थे। उन्होंने ही लिखा है -

जो राम नाम कहिं गावेगा,
सो भेद अभेद मिटावेगा।

इसके साथ ही एक दूसरा भजन बहुत प्रचलित हुआ वह है-

प्रभु जी तुम चंदन हम पानी,
जाकी अंग अंग बास समानी।

कोई भी समझ सकता है रैदास अपनी भक्ति में कहां तक पहुंचे हुए थे। यही कारण है कि मीरां जब गोस्वामी तुलसीदास को गुरु बनाने गयी तो गोस्वामी ने मीरां को रैदास के पास भेज दिया और कहा कि वही तुम्हारे गुरु बनने लायक हैं। मीरां को गुरु मिले और वह उनको राजस्थान तक साथ ले आयी। ❑



कारवां यूं बन रहा है, जुड़ रहे हैं समिति संकाय में नये मानद सहयोगी

❑

पिछले कुछ वर्षों से समिति में एक-एक कर अनुभवी एवं अपने अपने क्षेत्र में निष्णात साथियों का कारवां जुड़ता चला जा रहा है।

लगभग पांच बरस से तो डॉ. मनीष शर्मा समिति का पूर्ण मनोयोग के साथ मानद सहयोग कर रहे हैं। कई क्षेत्रों में उनकी दखल है और किसी काम को वे छोटा नहीं समझते हैं। हर पल अपना सहयोग देने को तत्पर रहते हैं।



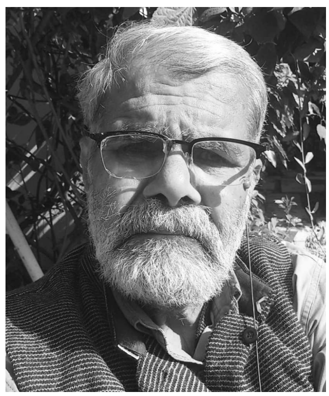
डॉ. मनीष शर्मा

ऐसे ही समिति को प्रो. श्रीकृष्ण खांडल जो आयुर्वेद के वरिष्ठ प्राचार्य एवं अनुभवी वैद्य हैं का परामर्श एवं विमर्श का लाभ मिल रहा है।



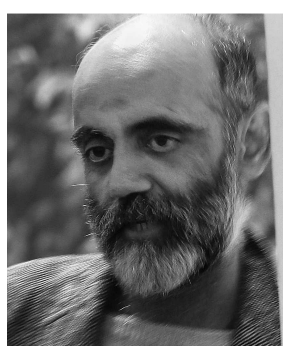
प्रो. श्री श्रीकृष्ण खांडल

वन विभाग से वरिष्ठ पद से सेवानिवृत्त हुए श्री देवेन्द्र भारद्वाज भी समिति से आ जुड़े हैं और औषधि उद्यान को विकसित करने में अपनी आधिकारिक विद्वता के साथ समिति का सहयोग कर रहे हैं।



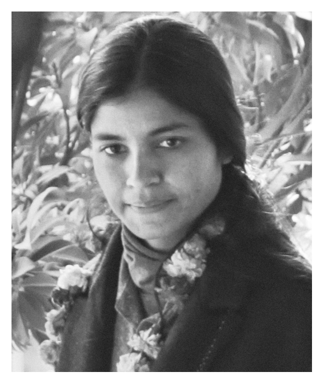
श्री देवेन्द्र भारद्वाज

हिन्दुस्तान टाइम्स से २२ बरस तक जुड़े रहे फोटो जनर्लिस्ट श्री हिमांशु व्यास जो अभी हरिदेव जोशी पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय से जुड़े हैं वे भी समिति के कामों में गहरी रुचि ले रहे हैं। हिमांशु हिन्दी अंग्रेजी दोनों भाषाओं में कविता लिखते हैं। जापान, आस्ट्रेलिया और कोरिया की कुछ साहित्यिक संस्थाओं से पुरस्कृत भी हो चुके हैं। लंदन से निकलने वाली कला एवं साहित्यिक पत्रिका 'मंक' में हिमांशु की रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। वे अब अपना स्टूडियो बना कर समिति में धूनी रमाने के लिये आ बैठे हैं। कदम बढ़ायें तो कारवां ऐसे ही जुड़ता है।



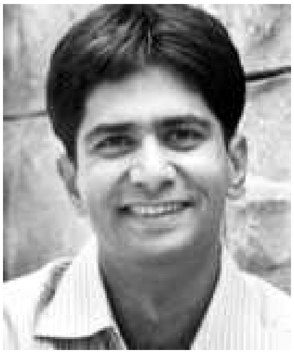
प्रो. हिमांशु व्यास

उधर सुश्री मूमल जो राजस्थान विश्वविद्यालय में नाट्य शास्त्र पढ़ाती रहीं वे भी पूरे उत्साह के साथ सब कुछ छोड़कर समिति से आ जुड़ी हैं। बहुत सारे नये कार्यक्रमों की रूपरेखा उनके मन में उमड़-घुमड़ रही है।



मूमल तंवर

ऐसे ही वरिष्ठ चित्रकार, कवि और कला शिक्षक श्री अमित कल्ला



अमित कल्ला

भी समिति के लिये हर सहयोग करने को तैयार हैं। भाई श्री अभिषेक कुमावत जो अच्छे फोटोग्राफर और फिल्म मेकर हैं भी समिति परिवार से आ जुड़े हैं। शिक्षा उन्होंने इंजीनियरिंग की ली है, मगर सृजनात्मक और आध्यात्मिक राहों की तलाश में रहते हुए वे समिति के सेवादार बन गये हैं।



अभिषेक कुमावत

इधर हमें श्रीमती नीलम अग्रवाल जो वरिष्ठ आर्किटेक्ट और इंटीरियर डिजाइनर हैं वे भी समिति में सहयोग कर रही हैं। नीलम कोई पारिश्रमिक स्वीकारने के बजाय समिति में आये दिन कुछ न कुछ आर्थिक सहयोग अथवा



नीलम अग्रवाल



अपर्णा मक्कड़

संसाधनों का सहयोग करने को तत्पर रहती हैं। ऐसे ही सुश्री अपर्णा मक्कड़ जो मणिपाल विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र पढ़ाती रही हैं वे भी गाहे-बगाहे समिति की ओर दौड़ी चली आती हैं और जैसा भी उनके लायक जो काम उनको दीखता है वो मदद करती हैं।

श्रीमती दीपाली वार्ष्णेय अग्रवाल प्राकृतिक चिकित्सक हैं, मगर अपनी क्लिनिक के अलावा वे भी हमारे औषधि उद्यान और आरोग्य साधनायन को एक सपने की तरह सच करने में सदैव प्रयासरत रहती हैं।

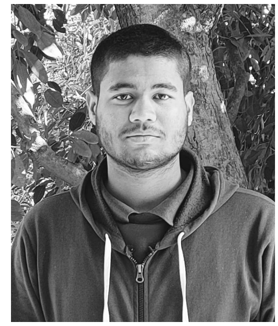


डॉ. दीपाली वार्ष्णेय अग्रवाल



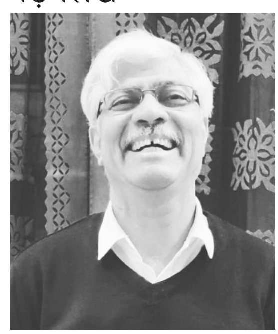
हुल्लास पुरोहित

कुछ बहुत ही युवा साथी जो सृजनात्मक ऊर्जा से भरे हैं वे भी इस कारवां में आ जुड़े हैं उनमें - यामिनी, हुल्लास, अंशुल और विपिन जैसे पढ़े लिखे नौजवान शामिल हैं।



अंशुल

भाई कमल वरिष्ठ शिक्षाकर्मी रहे हैं और दिगन्तर एवं कई शिक्षा संस्थाओं में काम करते हुए अब समिति के लिये काम करने को भी तैयार हो गये हैं। कमल जी भी अपनी रचनात्मक ऊर्जा से भरे हैं और उत्साह एवं समर्पण के साथ अपनी सेवाएं देने को तैयार हैं। इन सब का अभिनंद, आभार, आदाब। ❑



कमल जी



यामिनी



विपिन

यह घर पोथी घर है



मिशन ताना-बाना

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा कुमार एंड कम्पनी, जयपुर में मुद्रित तथा 7-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004 से प्रकाशित। का.संपादक - श्रीमती प्रेम गुप्ता

